ॐ

वेद में कृषि विद्या।

लेखक और प्रकाशक

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

द्वितीय वार १०००

संवत् १९८०, शक १८४५, सन १९२३

मूल्य ≡) तीन आने।

ॐ

वेदमें उद्योग धंदे।

वेद के अन्दर औद्योगिक जीवन किस प्रकार का वर्णन किया है, इस का विचार करना आवश्यक है। कई विद्वान कहते हैं कि वेद के मन्त्र केवल पठन अर्थात कंठ करने के लिये ही हैं। वेद के मन्त्रों को कंठ करके उन को यज्ञयाग आदि के प्रसंग मे बोला जाय तो मनुष्यों की उन्नति होती है ऐसा उन का मत है। कई दूसरे कहते हैं कि वेद का उपदेश आत्मिक भूमिका के ऊपर जाने के पश्चात ही लाभ देने वाला है। इत्यादि कई मत प्रचलित है। परन्तु वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो ऐसा प्रतीत होता है कि वेद का उपदेश मनुष्यों को सर्व अवस्थाओं में लाभदायक है। मनुष्यों के अन्दर औद्योगिक जीवन अवश्य चाहिए। इस के बिना मनुष्यसमाज की स्थिति हो नहीं सकती। इस लिये देखना चाहिये कि वेद ने औद्योगिक जीवन के विषय में क्या उपदेश दिया है।

यजुर्वेद के अध्याय ३० में **पुरुषमेध**, नरमेध, मनुष्ययज्ञ, अर्थात नृमेध, का विषय आया है। इस नरमेध के प्रकरण मे प्रसंगवशात् कई उद्योग धन्दे वालों के नामों का उल्लेख हुआ है

जो विस्तार पूर्वक इस नरमेध × को देखना चाहें वे य० अ० ३० स्वतन्त्रता पूर्वक देख सकते हैं। यहां केवल उस अध्याय में औद्योगिक जीवन के विषय में जो जो उल्लेख आया है उसी का विचार करना है, और देखना है कि उस अध्याय में किन किन कारखानों का अथवा किन किन कारीगरों का विचार हुवा है।

य० अ० ३० के मन्त्र ५ में 'वैश्य' और **आ-क्रय**, ये दो शब्द आ गये हैं। ये दो शब्द सूचित करते हैं कि व्योपार तथा क्रय विक्रय आदि करने का व्यवहार करना वेद के धर्म में इष्ट है। बनिया के पेशा को वेद अपनी सम्मति दे रहा है। सच्चाई से व्योपार व्यवहार करने के विरुद्ध वेद नहीं हैं।

मन्त्र ६ में '**शैलूष**' शब्द आया है। गवइया के गाने के समय ताल का ख्याल करना शैलूष का कार्य होता है। पत्थर के '**करताल**' बजाने वाले का नाम शैलूष होता है। पत्थरों से '**करताल**' नामक वाद्य बनाने का धन्दा इस शब्द से सूचित होता है।

इसी मन्त्र ६ में '**रथकार**' और '**तक्षाण**' ये दो शब्द आये हैं। '**रथकार**' शब्द रथ गाडी आदि बनाने का धन्दा सूचित कर रहा है। गाडी रथ आदि बनाने के साथ साथ बढई के काम धन्दे की सूचना जिस प्रकार मिलती है उसी प्रकार लुहार के धन्दे की सूचना भी मिलती है। क्योंकि रथ लकडी और लोहे

× य० अ० ३० पुरुषमेध। यह पुस्तक व्याख्या समेत स्वाध्याय मंडल द्वारा छापा गया है। **मू० १)** है।

से बनाया जाता है । ' **तक्षाण** ' शब्द तर्खाण का वाचक है और तर्खाणों के उद्योग धन्दे इस शब्द से सूचित किये जाते हैं ।

मन्त्र ७ में ' **माया**' शब्द आया है । इस माया शब्द का अर्थ आज कल वेदांत के कारण बिगडा है । परन्तु वेद में इस का अर्थ निम्न प्रकार होता है । **कुशलता, कला, हुनर, युक्ति, योजना, कारीगरी** । यह शब्द हुनर के सब कला कौशल का सूचक है ।

इसी मन्त्र में ' **कर्मार**' शब्द है । इसका अर्थ लुहार अथवा धात का काम करने वाला है । इस शब्द से लोहा, तांबा, चांदी, सोना आदि धातु का काम करने वाले कारीगरों की सूचना मिलती है । कम से कम लुहार के काम धन्दे की तो सूचना इस शब्दमें निःसंदेह है । यही लुहार तर्खाणके साथ श्रमविभाग करताहुवा गाडी, रथ आदि वाहन बनाने में सहायता देता है ।

इसी मंत्र में ' **मणिकार** ' शब्द आया है । इस का अर्थ जौहरी, अर्थात् हीरा, माणिक, मोती, नीलं, लाल, पुष्कराज आदि रत्नों का व्यवहार करने वाला ऐसा होता है । अर्थात् ये उद्योगधन्दे इस शब्द से सूचित हो गये हैं ।

इसी मन्त्र में ' **इपुकार, धनुष्कार, ज्याकार** ' य शब्द सूचित करते हैं कि युद्धके शस्त्रास्त्र बनाना भी एक धंदा है जो कि वैदिक धर्म से संमत है

मंत्र ७ में ' **हेति** ' शब्द तलवार आदि तीक्ष्ण हथियारों का वाचक है, तथा मंत्र आठ में ' **कंटकी** ' शब्द आया है यह शब्द लोहे के काटे जिस पर लगे हैं इस प्रकार के हाथियार का वाचक

है जिस प्रकार गदा अथवा मुंगरी होती है, उस प्रकार के शस्त्र पर लोहे के तीक्ष्ण कांटे होते हैं। शत्रु के शिरपर इसका प्रहार किया जाता है। यह शब्द क्षत्रियों के हाथियारों की सूचना दे रहा है।

मंत्र ९ में पेशस्कारी ' शब्द है। किसी पदार्थ को अन्तिम सौंदर्य दे कर उस को ठीक ठाक बनाना इस कारीगर का धंदा होता है। पदार्थ का सौंदर्य बढाना इस का मुख्य कार्य है। सजावट करने वाला यह कारीगर है। इस लिये इस शब्द से 'सजावट ' के हुनर का बोध होता है।

मंत्र १० में ' भिषज ' शब्द है। यह शब्द वैद्य के धन्दे की सूचना दे रहा है।

मंत्र ११ में, हास्तिप, गोपाल, अजपाल, अविपाल, कीनाश, आदि शब्द हैं। ये सूचित करते हैं कि माहुत गवालिया किसान के काम धन्दे वेद में उक्त हैं।

इसी मंत्र में ' वित्त-ध ' शब्द है। यह साहुकार के व्यवहार की सूचना देता है। पैसे का लेन देन करने वाले का नाम ' वित्त-ध ' होता है।

मंत्र १२ में 'दार्वाहार' शब्द है। वह सूचित कर रहा है कि लकडी काटने, लाने आदि का कार्य वेद में लिखा है।

इसी मंत्र में 'रजयित्री' शब्द बता रहा है कि कपडे रङ्गानेका अर्थात् रङ्गरेज का धंदा वेद में उक्त है।

मंत्र १३ में 'क्षत्ता, अनुक्षत्ता' आदि शब्द बता रहे हैं कि नकशी का खोद काम करना, लकडी आदि काटना, सैस का काम

धन्दा करना आदि धंदे वेदमें उक्त हैं। उक्त शब्दों के ये अर्थ प्रसिद्ध हैं।

मंत्र १३ में '**परीवेष्टा**' शब्द बताता है कि परोसने पकाने आदि का धंदा भी वेद को सम्मत है।

मंत्र १४ में '**अयस्ताप**' शब्द लोहे को तपाने वाले कारीगरों का बोधक है।

इसी मंत्र में '**मानस्कृत**' शब्द तोल बनाने वाले का सूचक है। तथा '**कोश-कारी**' शब्द थैलियां, बोरियां बनाने के धंदे का सूचक है।

मंत्र १५ में '**ऋभु**' शब्द श्रेष्ठ कारीगरों का वाचक है। इसी मंत्र में '**अजिन-संध**' शब्द बता रहा है कि चमडे के कामधंदे करना वेद में उक्त है। '**चर्म-म्न**' शब्द भी इसी मंत्र में है। चमडे के पदार्थों की मरम्मत करना इस शब्द से ज्ञात होता है।

मंत्र १७ में '**हिरण्यकार**' सुनार का बोधक है। इन शब्दों के अतिरिक्त कई अन्य शब्द भी हैं जो अन्य उद्योग धंदों के बोधक हैं। वेद के औद्योगिक जीवन का ज्ञान इन शब्दों से हो सकता है। वेद नागरिक धर्म बताता है। दुनियादारी छोड कर जङ्गल में जाने का उपदेश वेद नहीं करता। परन्तु जगत के धंन्दे करते हुए श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करके "आदर्श पुरुष" बनने का उपदेश वेद कर रहा है। यही वैदिक धर्म की विशेषता है।

वेद में लोहेके कारखाने।

[१] सुई।

सुई बनानेकी विद्या वेदमें है। अच्छी सुई विशेष प्रकारके इस्पात अथवा पुलादसे बनती है। साधारण लोहेसे अच्छी सुई नहीं बन सकती। यदि वेदमें सुईका उल्लेख है, तो विशेष प्रकारके इस्पातकी विद्याभी वेदमें हो सकती है। क्यों कि सुई और इस्पात का संबंध वह ही है कि जो मेज और लकडीका होता है।

सुईका उपयोग कपडे सीने आदि कामोंमें होता है। यदि वेदमें सुईका उल्लेख है, तो कपडे सीनेकी विद्या अर्थात् दर्जीका कामधंदा भी वेदमें हो सकता है। परंतु विद्वान युरोपीयन पंडित तथा उनके अनुचारी हमारे देसीभाई कहते और मानते हैं कि कपडे सीनेकी विद्या अर्थात् दर्जीका कामधंदा आर्योंमें कभी न था। ऋग्वेदके कालसे लेकर महाभारत के कालतक आर्योंमें सीयेहुए कपडे - अर्थात् कुर्ता, अंगरखा, पतलून, शर्ट, कोट आदि - पहननेका रिवाज न था। जब ग्रीसके लोगोंके साथ आर्योंका संबंध हो गया, तबसे दर्जीका पेशा आर्योंने सीख लिया। इसकी सत्यता अथवा असत्यताका विचार हम किसी

अन्य स्थानपर करेंगे। यहां केवल इतना ही देखना है कि वेदमें सुई है या नहीं। और यदि है तो उसका उपयोग किस कामके साथ वर्णन किया है। देखिए निम्न मंत्र।

अधोमुखा : सूचिमुखा अथो विकंकतीमुखा :॥
क्रव्यादो वातरंहस आसजन्त्वमित्रान् वज्रेण त्रिसंधिना॥

अथर्व. ११। १०। ३

"(अधो - मुखाः) लोहेके मूंहवाले, (सूची - मुखा) सूईके समान मूंहवाले, [अथो] और [विकंकती - मुखाः] कंगेवके समान मूंहवाले जो वात-रंहसः) वायुके साथ घूमते हैं और जो (त्रि - संधिना वज्रेण) तीन संधियुक्त वज्रसे (क्रव्य अदः) मांस खाते हैं, वे सब (अ - मित्रान्) शत्रुओंमें (आसजन्तु) संमिलित हैं।"

मच्छर आदि प्राणी जो सुईके समान मुंह धारण करते हैं, और जो अपने मुखके तीन धारावाले शस्त्रसे खून चूसते हैं; तथा जो वायुके वेगके साथ भ्रमण करते रहते हैं, वे सब शत्रु हैं अर्थात् मच्छर आदि प्राणी मनुष्योंके शत्रु हैं, यह मंत्रका तात्पर्य है। इस मंत्र में **सूची - मुखा :** सुईकेसमान मुख धारण करनेवाले प्राणियोंका उल्लेख है यह गुणबोधक नाम है। सुईकी उपमा मुखकेलिये यहां आगई है। सुईके आकारकी निश्चित कल्पना यहां है। तथा—

ये अंस्या ये अंग्या सूचिका ये प्रकंकताः॥
अदृष्टा किंचनेह वः सर्वे साकं निजस्यत॥

ऋग्वेद १।१९१।७

" (ये अंस्याः) जो बाहुवाले (ये अंग्याः) जो अवयवोंवाले, (ये सूचिकाः) जो सूईवाले, (ये प्रकंकताः) जो विष धारणकरनेवाले प्राणी [इह] यहां हैं [किंचित् अदृष्टाः] किसी प्रकारभी जो दिखाई नहीं देते, वे [सर्वे] सब [वः] आप लोकोंसे दूर [साकं निजस्यत] सब मिलकर किये जावें। "

इस मंत्रमें सूचीके समान अवयवसे काटनेवाले सूक्ष्म प्राणियोंका वर्णन है। ये प्राणि भी मनुष्योंके शत्रु हैं इनमें कई आंखसे दीखते हैं। और कई दिखाई नहीं देते। बिच्छु आदि प्राणी सुईके समान दूमसे काटते हैं तथा अन्य अदृश्यभी होंगे। इनके विषसे बडा कष्ट होता है, इसलिये इनका नाश करनेको आज्ञा वेदने दी है। इस मंत्रमें 'सूचिकाः' "सुईके समान' अवयवसे दंश करनेवाले प्राणी। यह शब्द पूर्वशब्दके समानही सुईकी कल्पना स्पष्टतासे बता रहा है।

उपमा उन पदार्थोंकी दी जाती है कि जो सबको ज्ञात हो सकते हैं। सुई यदि अज्ञात पदार्थ होगा तो उसकी उपमा योग्य नहीं हो सकती। इससे व्यक्त होता है, कि सुईको स्पष्ट कल्पना यहां है, इसी लिये उसकी उपमा सूक्ष्म प्राणियोंके अवयवोंको दी है। अब सूचीका उपयोग देखिए —

सीव्यत्वपः सूच्याऽच्छिद्यमानया
ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥

ऋ. २। ३२। ४

[अ--च्छिद्यमानया] **न टूटने वाली** [सूच्या] सुईसे [अपः सीव्यतु] वह अपना काम सीवे और [उक्थ्यं] प्रशंसायोग्य [शत-दायं] सैंकडों प्रकारके दान देनेवाले [वीरं] वीरको [ददातु] देवे । ”

स्त्रियां न टूटनेवाली सुईसे अपना कपडा सीयें और वैसा सीया हुआ कपडा शूर वीरको देवें । इस मंत्रमें ‘ **आच्छिद्यमानया सूच्या अप : सीव्यतु** ’ न टूटनेवाली सूईसे वह स्त्री अपना काम सीवे, ऐसा स्पष्ट कहा है । सुईका सीनेका काममें उपयोग यहां स्पष्ट शब्दोंसे वर्णन किया है । अर्थात् सुईकी और कपडे सीनेकी कल्पना इस मंत्रमें स्पष्ट है । ‘ **अ - च्छिद्यमाना सूचिः** ’ अर्थात् ‘ न टूटनेवाली सुई ’ इस मंत्रमें कही है । इससे दो प्रकारके सुईयोंकी कल्पना विदित होती है । [१] टूटनेवाली सुई और [२] न टूटनेवाली सुई । टूटनेवाली सुई खराब होती है, और न टूटनेवाली सुई अच्छी होती है । इसलिये ‘ **न टूटनेवाली सुईसे सीओ** ’ ऐसा वेदने कहा है । सुइयां बनानेवाले कारखानदारोंको भी उचित है, कि वे न टूटनेवाली सुइयां बनावें और टूटनेवाली न बनावें । उक्त मंत्रोंसे इतनी बात स्पष्ट होती है । तथा —

देवानां पत्न्यो दिश : सूचिभि : शम्यन्तु त्वा ॥

यजु . वा . सं. २३ । ३६

“ देवों की धर्मपत्नियां सुईयोंसे तुमको वश करें ” इस मंत्रमें पशुओंको -- अथवा जंगली जानवरोंको वश करनेमें सुइयोंका उपयोग करना लिखा है । इस विषयमें अधिक विचार करके योग्य निश्चय करना

उचित है। परंतु सुइयोंका उपयोग और प्रयोग इस मंत्रमें है, इसमें कोई संदेह नहीं। इस प्रकार वेदमें सूचीका वर्णन है। अब ब्राह्मण ग्रंथोंमें सुईका वर्णन देखिये –

राका ह वा एतां पुरुषस्य सेवनीं सीव्यति।
यैषा शिस्नेऽधि पुमांसः॥

ऐ. ब्रा. ३।३७

"राका निश्चयसे पुरुषकी सेवनीको सीती है जो पुरुषके शिस्नके नीचे होती है।" पुरुषके शिस्नके नीचे और अंडकोशको ऊपर एक सिलाई होती है। उस सिलाईको राका देवी गर्भमें ही सीती है, ऐसा उक्त ऐतरेय ब्राम्हणमें कहा है। अंडकोशकी सिलाई की कल्पना कितनी उत्तम है पाठक जान सकते हैं। बोरीयां थैले थैलियां आदिपर जैसी सिलाई हुआ करती है वैसी हि पुरुषके अंड-कोशपर होती है यह सादृश्यकी कल्पना अत्यंत स्पष्ट है। अब शतपत ब्राम्हणमें देखिये –

सूचीभिः कल्पयन्ति॥ शत. ब्रा. १३।२।१०।२
त्र्य्यः सूच्यो भवन्ति। लोहमय्यो रजता हिरण्यः॥

शत. ब्रा. १३।२।१०।३

"सुइयोंसे तय्यार करते हैं॥ तीन प्रकारकी सुइयां होती हैं।, लोहेकी, चांदिकी, और सोनेकी।' इस प्रकार शतपथमें वर्णन है। इसके अतिरिक्त तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।९।६।४, जैमिनीय ब्राम्हण २।१०, जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण १।१०।३ आदि ग्रंथोंमें सूची

का उल्लेख आगया है। पाठक वहां देखें ! इससे स्पष्ट होता है कि कपडा सीना और न टूटनेवाली सुई बनाना वेदमें है।

सीनेकी सुई जहां होती है वहां सीये हुए कपडे न होंगे ऐसा कैसे माना जा सकता है! वेदमें **तप्य** [कुडता], **सामूल**] वूनी शर्ट] **द्रापी** (ओवर कोट) आदि शब्द सीये हुए कपडेके लिये आगये है। इसलिये धागेसे सीये हुए कपडे वेदमें लिखे हैं। कपडोंका विचार करनेके समय इसका विशेष विचार करेंगे। यहां सुईकेसाथ जिनका संबध विशेष कर आता है उनके नाम ऊपर दिये हैं।

अस्तु इस प्रकार इस्पातकी अच्छी अर्थात् न टूटनेवाली सुईका उल्लेख वेदमें है यह बात सिद्ध होगई।

लोहारके काम धंदे ।

उस्तुरा, छुरा और कैंची ।

गत लेख के अंदर ' वेदमें लोहेके कारखाने ' इस शीर्षकके नीचे बताया गया था, कि वेदमें दर्जीकी कपडे सीनेकी सुई का उल्लेख है । न टूटनेवाली अच्छी सुईका वर्णन होनेसे उत्तम सुईकी कल्पना वेदमें है । जिससे सिद्ध होता है कि (१) दर्जीका काम, तथा (२) सुईयां तैयार करनेका काम धंदा वेदमें उक्त है । उत्तम सुईके लिये पुलाद अथवा इस्पातकी आवश्यकता होनेसे इस्पात बनानेकी विद्याभी वेदसे सूचित होती है । यही विषय अन्य रीतिसे इस लेखमें देखना है ।

पुलाद अथवा इस्पात से अनेक शस्त्रास्त्र बनते हैं । परंतु उनमेंसे युद्धके शस्त्रास्त्रोंका वर्णन यहां इस लेखमें विशेष रीतीसे करना नहीं है । उस्तुरा, छुरा, चक्कु, कैंची आदि घरके कामोंमें उपयुक्त होनेवाले पदार्थोंकाही आज इस लेखमें विशेष विचार करना है । उत्तम उस्तुरेका वर्णन निम्न मंत्रोंमें आगया है—

आयमगन् सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि ॥
आदित्या रुद्रा वसव उन्दन्तु सचेतसाःसोमस्य

राज्ञो वपत प्रचेतसः ॥ १ ॥ आदितिः श्मश्रु वपत्वाप उंदंतु वर्चसा ॥ चिकित्सतु प्रजा- पतिर्दीर्घायुत्वाय चक्षसे ॥ २ ॥ येनावपत् सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान् ॥ तेन ब्रह्मणो वपतेदमस्य गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान् ॥ ३ ॥

—अथर्व. ६ । ६८ । १-३

(अयं सविता क्षुरेण आगन्) यह सविता उस्तुरेके साथ आया है। (हे वायो उष्णेन उदकेन एहि) हे वायो! उष्ण उदकके साथ आओ। (सचेतसः) एक मतसे वसु, रुद्र और आदित्य (उंदंतु) इसके बालोंको गीला करें और (प्रचेतसः सोमस्य राज्ञः) बुद्धिमान सोम राजाकी आज्ञासे (वपत) मुंडन कीजिए, हजामत बनाइए अथवा बाल बनाइए।

इस मंत्रमें तथा इस लेखमें आगे आने वाले अन्य मंत्रोंमें सविता, वायु, रुद्र आदि देवताओंके नाम विशेष हेतुसे लिखे हैं। इनके हेतुका प्रदर्शन इस लेखमें स्थानके अभावसे नहीं किया जा सकता। इसलिये इस लेखके विषयकाही यहां स्पष्टीकरण किया जायगा। अन्य शब्दोंका विवरण किसी अन्य प्रसंगमें किया जायगा। अस्तु।

उक्त मंत्रमें (१) उष्ण उदकसे बालोंको भिगोने, और पश्चात् (२) उस्तुरेसे हजामत बनानेका उल्लेख है। गरम पानीसे

बालोंको भिगोनेसे हजामत करनेके समय सुख होता है, इसलिये वेदनें यह बात कही है, कि हजामत बनानेके समय उष्ण उदकही लिया जावे ।

(प्रचेतसः राज्ञः वपत) बुद्धिमान राजाकी आज्ञा जिन्होंन ली है, ऐसे ही नापित हजामत बनानेका धंदा करें। अर्थात् बाल बनानेका हजामका धंदा करनेके लिये राजाकी आज्ञा लेनेकी आवश्यकता है ऐसा यहां प्रतीत होता है। हरएक अशिक्षित नापित हजामका व्यवहार न करे, परंतु जिसको सरकारी आज्ञा प्राप्त हुई है वह ही उक्त धंदा करे। हजामतका धंदा यद्यपि साधारण है, तथापि उसके विषयमें भी इतनी खबरदारी वेदने ली है, इसमें यह हेतु दीखता है कि हजामतका आयुष्यके वर्धनके साथ संबंध है। योग्य रीतिसे हजामत बनानेसे आयुष्यकी वृद्धि होती है, और अयोग्य रीतिसे हजामत होनेसे आयुष्य कम होता है। चरकमें कहा है --

पौष्टिकं वृष्यमायुष्यं शुचिरूपविराजनम् ॥
केशश्मश्रुनखादीनां कर्तनं संप्रसाधनम् ॥

चरक सू. ५ । ९३

' केश, श्मश्रु नख आदिकोंको योग्य रीतीसे काटनेसे शरीरकी पुष्टि, वीर्यवृद्धि, दीर्घ आयुष्य, शुद्धता, और सौंदर्यकी वृद्धि होती है। ' अर्थात् अयोग्य रीतिसे हजामत बनानेसे इसका नाश होता है। इससे सिद्ध है, कि हजामत बनानेवाले अपने हजामतके

अन्य स्थानपर करेंगे। यहां केवल इतनाही देखना है कि वेदमें सुई है या नहीं। और यदि है तो उसका उपयोग किस कामके साथ वर्णन किया है। देखिए निम्न मंत्र।

अयोमुखा : सूचिमुखा अथो विकंकतीमुखा : ॥
क्रव्यादो वातरंहस आसजन्त्वमित्रान् वज्रेण त्रिसंधिना ॥

अथर्व. ११। १०। ३

"(अयो - मुखा:) लोहेके मूंहवाले, (सूची - मुखा) सूईके समान मूंहवाले, [अथो] और [विकंकती - मुखा:] कंगेवके समान मूंहवाले जो वात - रंहस:) वायुके साथ घूमते हैं और जो (त्रि - संधिना वज्रेण) तीन संधियुक्त वज्रसे (क्रव्य अद:) मांस खाते हैं, वे सब (अ - मित्रान्) शत्रुओंमें (आसजन्तु) संमिलित हैं।"

मच्छर आदि प्राणी जो सुईके समान मुंह धारण करते हैं, और जो अपने मुखके तीन धारावाले शस्त्रसे खून चूसते हैं; तथा जो वायुके वेगके साथ भ्रमण करते रहते हैं, वे सब शत्रु हैं अर्थात् मच्छर आदि प्राणी मनुष्योंके शत्रु हैं, यह मंत्रका तात्पर्य है। इस मंत्र में **सूची - मुखा :** सुईकेसमान मुख धारण करनवाले प्राणियोंका उल्लेख है यह गुणबोधक नाम है। सुईकी उपमा मुखके लिये यहां आगई है। सुईके आकारकी निश्चित कल्पना यहां है। तथा—

ये अंस्या ये अंग्या सूचिका ये प्रकंकता: ॥
अदृष्टा किंचनेह व : सर्वे साकं निजस्यत ॥

ऋग्वेद १।१९१।७

" (ये अस्या:) जो बाहुवाले (ये अंग्या:) जो अवयवोंवाले, (ये सूचिका :) जो सूईवाले , (ये प्रकंकता:) जो विष धारणकरनेवले प्राणी [इह] यहां हैं [किंचित् अदृष्टाः] किसी प्रकारभी जो दिखाई नहीं देते, वे [सर्वे] सब [वः] आप लोकोंसे दूर [साकं निजरयत] सब मिलकर किये जावें । "

इस मंत्रमें सूचीके समान अवयवसे काटनेवाले सूक्ष्म प्राणियोंका वर्णन है । ये प्राणी भी मनुष्योंके शत्रु हैं इनमें कई आंखसे दीखते हैं । और कई दिखाई नहीं देते । बिच्छु आदि प्राणी सुईके समान डूमसे काटते हैं तथा अन्य अदृश्यभी होंगे । इनके विषसे बडा कष्ट होता है, इसलिये इनका नाश करनेकी आज्ञा वेदने दी है । इस मंत्रमें '**सूचिकाः**' 'सुईके समान' अवयवसे दंश करनेवाले प्राणी । यह शब्द पूर्वशब्दके समानही सुईकी कल्पना स्पष्टतासे बता रहा है । उपमा उन पदार्थोंकी दी जाती हैं कि जो सबको ज्ञात हो सकते हैं । सुई यदि अज्ञात पदार्थ होगा तो उसकी उपमा योग्य नहीं हो सकती । इससे व्यक्त होता है, कि सुईकी स्पष्ट कल्पना यहां है, इसी लिये उसकी उपमा सूक्ष्म प्राणियोंके अवयवोंको दी है । अब सूचीका उपयोग देखिए —

सीव्यत्वपः सूच्याऽच्छिद्यमानया
ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥

ऋ० २।३२।४

[अ-च्छिद्यमानया] **न टूटने वाली** [सूच्या] सुईसे [अपः सीव्यतु] वह अपना काम सीवे और [उक्थ्यं] प्रशंसायोग्य [शत-दायं] सैंकडों प्रकारके दान देनेवाले [वीरं] वीरको [ददातु] देवे । ”

स्त्रियां न टूटनेवाली सुईसे अपना कपडा सीयें और वैसा सीया हुआ कपडा शूर वीरको देवें । इस मंत्रमें ‘ **आच्छिद्यमानया सूच्या अप : सीव्यतु** ’ न टूटनेवाली सूईसे वह स्त्री अपना काम सीवे, ऐसा स्पष्ट कहा है । सुईका सीनेका काममें उपयोग यहां स्पष्ट शब्दोंसे वर्णन किया है । अर्थात् सुईकी और कपडे सीनेकी कल्पना इस मंत्रमें स्पष्ट है। ‘ **अ - च्छिद्यमाना सूचि :** ’ अर्थात् ‘ न टूटनेवाली सुई ’ इस मंत्रमें कही है । इससे दो प्रकारके सुईयोंकी कल्पना विदित होती है । [१] टूटनेवाली सुई और [२] न टूटनेवाली सुई । टूटनेवाली सुई खराब होती है, और न टूटनेवाली सुई अच्छी होती है । इसलिये ‘ **न टूटनेवाली सुईसे सीओ** ’ ऐसा वेदने कहा है । सुइयां बनानेवाले कारखानदारोंको भी उचित है, कि वे न टूटनेवाली सुइयां बनावें और टूटनेवाली न बनावें। उक्त मंत्रोंसे इतनी बात स्पष्ट होती है । तथा —

देवानां पत्न्यो दिश : सूचिभि : शम्यन्तु त्वा ॥

यजु . वा . सं. २३ । ३६

“ देवों की धर्मपत्नियां सुईयोंसे तुमको वश करें ” इस मंत्रमें पशुओंको -- अथवा जंगली जानवरोंको वश करनेमें सुइयोंका उपयोग करना लिखा है। इस विषयमें अधिक विचार करके योग्य निश्चय करना

उचित है। परंतु सुइयोंका उपयोग और प्रयोग इस मंत्रमें है, इसमें कोई संदेह नहीं। इस प्रकार वेदमें सूचीका वर्णन है। अब ब्राह्मण ग्रंथोंमें सुईका वर्णन देखिये –

राका ह वा एतां पुरुषस्य सेवनीं सीव्यति।
यैषा शिस्नेऽधि पुमांसः॥

ऐ. ब्रा. ३।३७

"राका निश्चयसे पुरुषकी सेवनीको सीती है जो पुरुषके शिस्नके नीचे होती है।" पुरुषके शिस्नके नीचे और अंडकोशके ऊपर एक सिलाई होती है। उस सिलाईको राका देवी गर्भमें ही सीती है, ऐसा उक्त ऐतरेय ब्राम्हणमें कहा है। अंडकोशकी सिलाई की कल्पना कितनी उत्तम है पाठक जान सकते हैं। बोरीयां थैले थैलियां आदिपर जैसी सिलाई हुआ करती है वैसीही पुरुषके अंडकोशपर होती है यह सादृश्यकी कल्पना अत्यंत स्पष्ट है। अब शतपत ब्राम्हणमें देखिये –

सूचीभिः कल्पयन्ति॥ शत. ब्रा. १३।२।१०।२
त्रय्यः सूच्यो भवन्ति। लोहमय्यो रजता हिरण्यः॥
शत. ब्रा. १३।२।१०।३

"सुइयोंसे तय्यार करते हैं॥ तीन प्रकारकी सुइयां होती हैं। लोहेकी, चांदिकी, और सोनेकी।' इस प्रकार शतपथमें वर्णन है। इसके अतिरिक्त तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।९।६।४, जैमिनीय ब्राम्हण २।१०, जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण १।१०।३ आदि ग्रंथोंमें सूची

का उल्लेख आगया है। पाठक वहां देखें ! इससे स्पष्ट होता है कि कपडा सीना और न टूटनेवाली सुई बनाना वेदमें है।

सीनेकी सुई जहां होती है वहां सीये हुए कपडे न होंगे ऐसा कैसे माना जा सकता है! वेदमें **तार्प्य** [कुडता], **सामूल**] वूनी शर्ट] **द्रापी** (ओवर कोट) आदि शब्द सीये हुए कपडेके लिये आगये हैं। इसलिये धागेसे सीये हुए कपडे वेदमें लिखे हैं। कपडोंका विचार करनेके समय इसका विशेष विचार करेंगे। यहां सुईकेसाथ जिनका संबंध विशेष कर आता है उनके नाम ऊपर दिये हैं।

अस्तु इस प्रकार इस्पातकी अच्छी अर्थात् न टूटनेवाली सुईका उल्लेख वेदमें है यह बात सिद्ध

उस्तुरा, छुरा और कैंची ।

गत लेख के अंदर 'वेदमें लोहेके कारखाने' इस शीर्षकके नीचे बताया गया था, कि वेदमें दर्जीकी कपडे सीनेकी सुई का उल्लेख है । न टूटनेवाली अच्छी सुईका वर्णन होनेसे उत्तम सुईकी कल्पना वेदमें है । जिससे सिद्ध होता है कि (१) दर्जीका काम, तथा (२) सुईयां तैयार करनेका काम धंदा वेदमें उक्त है । उत्तम सुईके लिये पुलाद अथवा इस्पातकी आवश्यकता होनेसे इस्पात बनानेकी विद्याभी वेदसे सूचित होती है । यही विषय अन्य रीतिसे इस लेखमें देखना है ।

पुलाद अथवा इस्पात से अनेक शस्त्रास्त्र बनते हैं । परंतु उनमेंसे युद्धके शस्त्रास्त्रोंका वर्णन यहां इस लेखमें विशेष रीतिसे करना नहीं है । उस्तुरा, छुरा, चक्कु, कैंची आदि घरके कामोंमें उपयुक्त होनेवाले पदार्थोंकाही आज इस लेखमें विशेष विचार करना है । उत्तम उस्तुरेका वर्णन निम्न मंत्रोंमें आगया है—

आयमगन् सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि ॥
आदित्या रुद्रा वसव उन्दन्तु सचेतसांःसोमस्य

राज्ञो वपत प्रचेतसः ॥ १ ॥ अदितिः श्मश्रु वपत्वाप उंदंतु वर्चसा ॥ चिकित्सतु प्रजा-पतिर्दीर्घायुत्वाय चक्षसे ॥ २ ॥ येनावपत् सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान् ॥ तेन ब्रह्मणो वपतेदमस्य गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान् ॥ ३ ॥

—अथर्व. ६ । ६८ । १ – ३

(अयं सविता क्षुरेण आगन्) यह सविता उस्तुरेके साथ आया है । (हे वायो उष्णेन उदकेन एहि) हे वायो ! उष्ण उदकके साथ आओ । (सचेतसः) एक मतसे वसु, रुद्र और आदित्य (उंदंतु) इसके बालोंको गीला करें और (प्रचेतसः सोमस्य राज्ञः) बुद्धिमान सोम राजाकी आज्ञासे (वपत) मुंडन कीजिए, हजामत बनाइए अथवा बाल बनाइए ।

इस मंत्रमें तथा इस लेखमें आगे आने वाले अन्य मंत्रोंमें सविता, वायु, रुद्र आदि देवताओंके नाम विशेष हेतुसे लिखे हैं । इनके हेतुका प्रदर्शन इस लेखमें स्थानके अभावसे नहीं किया जा सकता । इसलिये इस लेखके विषयकाही यहां स्पष्टीकरण किया जायगा । अन्य शब्दोंका विवरण किसी अन्य प्रसंगमें किया जायगा । अस्तु ।

उक्त मंत्रमें (१) उष्ण उदकसे बालोंको भिगोने, और पश्चात् (२) उस्तुरेसे हजामत बनानेका उल्लेख है । गरम पानीसे

वालोंको भिगोनेसे हजामत करनेके समय सुख होता है, इसलिये वेदनें यह बात कही है, कि हजामत बनानेके समय उष्ण उदकही लिया जावे ।

(प्रचेतसः राज्ञः वपत) बुद्धिमान राजाकी आज्ञा जिन्हान ली है, ऐसे ही नापित हजामत बनानेका धंदा करें। अर्थात् बाल बनानेका हजामका धंदा करनेके लिये राजाकी आज्ञा लेनेकी आवश्यकता है ऐसा यहां प्रतीत होता है । हरएक अशिक्षित नापित हजामका व्यवहार न करे, परंतु जिसको सरकारी आज्ञा प्राप्त हुई है वह ही उक्त धंदा करे। हजामतका धंदा यद्यपि साधारण है, तथापि उसके विषयमें भी इतनी खबरदारी वेदने ली है, इसमें यह हेतु दीखता है कि हजामतका आयुष्यके वर्धनके साथ संबंध है । योग्य रीतिसे हजामत बनानेसे आयुष्यकी वृद्धि होती है, और अयोग्य रीतिसे हजामत होनेसे आयुष्य कम होता है । चरकमें कहा है --

पौष्टिकं वृष्यमायुष्यं शुचिरूपविराजनम् ॥
केशश्मश्रुनखादीनां कर्तनं संप्रसाधनम् ॥

चरक सू. ५ । ९३

'केश, श्मश्रु नख आदिकोंको योग्य रीतिसे काटनेसे शरीरकी पुष्टि, वीर्यवृद्धि, दीर्घ आयुष्य, शुद्धता, और सौंदर्यकी वृद्धि होती है । ' अर्थात् अयोग्य रीतिसे हजामत बनानेसे इसका नाश होता है। इससे सिद्ध है, कि हजामत बनानेवाले अपने हजामतके

यं त्वं हिनोषि मर्त्यं ॥ ऋ. ८।४।१६

हे (वि-मोचन) स्वतंत्रताका अर्पण करनेवाले ईश्वर ! (भुरिजोः क्षुरं इव) न्हाईके दोनों हाथोंमें रहनेवाले उस्तुरेके समान (नः सं शिशीहि) हम सबको उत्तम प्रकारसे तेजस्वी करो । (रायः रास्व) धनका दान करो । (त्वं यं मर्त्यं हिनोषि) तू जिस मनुष्यको उत्तम प्रेरणा करता है उसको (त्वे सुवेदं उस्रियं वसु) तेरे पास सुगमताके साथ प्राप्त होनेवाला जो तेजस्वी धन है (तत् नः) वह हम सबको देओ ।

इस मंत्रमें ' उस्तुरेके समान तीक्ष्णता ' हम सबमें उत्पन्न करो ऐसी प्रार्थना है । इस मंत्रका श्री. सायणाचार्य निम्न प्रकार भाष्य करते हैं —

> नः अस्मान् सं शिशीहि सम्यक् निश्य
> तीक्ष्णबुद्धीन् कुरु। भुरिजोरिव । बाहुनामैतत् ।
> नापितस्य बाह्वोरिव स्थितं क्षुरमिव ।
> (सायणभा. ८।४।१६)

'न्हाईके दो हाथोंके बीचमें जैसा तेज उस्तुरा रहता है उस प्रकार **हम सबको तेज करो अर्थात् अत्यंत बुद्धिमान् करो** ' यहां छुरेकी तेजस्विताके साथ बुद्धिकी और मनुष्योंकी तेजस्विताकी तुलना की है। इस समयमें भी कहते हैं कि'उस मनुष्यकी बुद्धि बडी तेज है तथा उस न्हाईका उस्तुरा बहुत तेज है। स्वातंत्र्य देनेवाले ईश्वरके पास यहां सबसे प्रथम बुद्धिकी तेजस्विता की प्रार्थना की है और पश्चात्

धनकी इच्छा की है। इससे बहुत बोध प्राप्त हो सकता है। **बुद्धिकी तेजस्वितासे ही स्वातंत्र्यकी प्राप्ति होना संभव है।**' यह वेदका आशय यहां स्पष्ट प्रतीत होता है। बुद्धिमें जब तक गुलामीके ख्याल रहेंगे तब तक बाह्य साधनोंकी अनुकूलतासे भी स्वातंत्र्यकी प्राप्ति नहीं हो सकती अस्तु। क्षत्रियोंके छुरियोंका वर्णन निम्न मंत्रमें देखिए

भूरीणि भद्रा नर्येषु बाहुषु वक्षःसु रुक्मा रभसासो अंजयः॥ अंसेष्वेताः पविषु क्षुरा अधि वयो न पक्षान्व्यनु श्रियो धिरे॥ ऋ, १।१६६।१०

(नर्येषु बाहुषु वक्षःसु)मनुष्यमात्रका हित करनेवाले आपके बाहुओं और छातियोंमें (भूरीणि भद्रा) बहुत ही कल्याणकारक गुण हैं, जो (रभसासः अंजयः रुक्माः) सुंदर तेजस्वी आभूषणोंके समान आपकी शोभा बढा रहे हैं। (वयःपक्षान् न) जिस प्रकार पक्षियोंको पक्ष शोभा देते हैं, उस प्रकार (एताः क्षुराः अंसेषु पविषु श्रियः अधि धिरे) ये छुरे आपके खंदों पर चमकनेवाले विविध शस्त्रोंकी शोभा बढारहे हैं।

इसमें '**क्षुर**' शब्द छुरा, छुरी, कटियार, जंबिया आदि प्रकारके शस्त्रका भाव बता रहा है। '**पवि**' भी एक प्रकारका तीक्ष्ण शस्त्र होता है, बरछी, भाला बाण का बोध इस शब्दसे होता है। इस मंत्रमें '**नर्येषु बाहुषु**, (नृभ्यो हितेषु बाहुषु) सर्व मनुष्योंका हित करनेवाले हाथोंका वर्णन है। अर्थात् '**हाथोंका सार्थक सार्वजनिक हितके कार्य करनेसे ही होता है**, यह आशय यहां स्पष्ट है। वेद सार्वजानिक हित, जनताकी सेवा, लोककल्याण आदि करनेका

भाव कितनी उच्च स्वरसे पुकार रहा है इसकी साक्षी यहां मिल-सकती है। अस्तु ।क्षत्रियोंके छुरेका वर्णन पाठक उक्त मन्त्रमें देख सकते हैं ।तथा—

शशः क्षुरं प्रत्यंचं जगाराद्रिं लोगेन व्यभेद-
मारात्॥ बृहंतं चिदृहते रंधयानि वयद्—
वत्सो वृषभं शूशुवानः ॥ ऋ. १०।२८।९

(प्रत्यंचं क्षुरं शशः जगार) वेगसे, फेंके हुए भालेको छोटासा शशक–खरगोष–निगल सकता है, (लोगेन अद्रिं आरात् व्यभेदं) छोटे ढेलेसे दूरसे ही मैं बडे पहाडका चूर्ण करता हूं । (ऋहते चित् बृहंतं रंधयानि) छोटेके हितके संरक्षणके लिये निश्चयसे मैं बडेको भी रगड देता हूं, (शूशुवानः वत्सः वृषभं वयत्) फूर्तिला बछडा बडे बैलके साथ भी युद्ध कर सकता है ।

यह मंत्र बडे विलक्षण अलंकारसे परमेश्वरके भक्तोंके सामर्थ्यका वर्णन कर रहा है । इस संपूर्ण सूक्तमें ऐसीही बातें हैं जो साधा-रण अवस्थामें अशक्य होता है वह परमेश्वरके एकनिष्ठ भक्तोंको सुलभतासे साध्य होता हैं । निर्बल साधु बडे बडे सार्वभौम सम्रा-टोंके मुकाबलेमें खडे होते हैं, उनमें यही शक्ति होती है । यदि परमेश्वरीय शक्ति उन भद्र पुरूषोंमें न होगी तो तोफों, बंदूकों और शस्त्रोंके सन्मुख अकेला निःशस्त्र साधु महात्मा खडा रहकर किस प्रकार विजय प्राप्त कर सकता है ? इतिहासमें हम देख रहे हैं कि निर्बल साधु सार्वभौम सम्राटोंका मुकाबला करता हुआ यशस्वी होता है । यही भाव उक्त मंत्रमें वर्णन किया है ।

(१) छोटासा खरगोष– शशक– जान लेनेवाले वालेको भी नि गल जाता है, (२) छोटेसे ढलेसे बडे पहाडका चूरण हो सकता है, (३) छोटा बछडा बडे बैलके साथ युद्ध कर सकता है क्योंकि (४) परमेश्वर अपनी शक्तिसे बडे शक्तीवालेके क्रूर पंजोंसे निर्बलोंका संरक्षण करता है। अस्तु। इस मंत्रमें 'क्षुर' शब्दका अर्थ शस्त्रविशेष इतना ही है। यही अर्थ निम्न मंत्रोंमें हैं

क्षुरपविरीक्षमाणा ॥ अ. १२।७।९

क्षुरपविर्मृत्युर्भूत्वा वि धाव त्वं ॥ अ. १२।१०।९

वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन क्षुरभृष्टिना ॥

अथर्व. १२।११।५

इन मंत्रोंमें (१) क्षुर–पविः, (२) क्षुर–भृष्टिः और (३) शतपर्व वज्र इन तीन शस्त्रोंका वर्णन है। उस्तुरेके समान तीखा वज्रास्त्र, उक्त मंत्रोंमें वर्णन किया हैं।

तात्पर्य, छुरा, छुरी, उस्तुरा, कैंची, कतरनी, भाला, बरछी, शस्त्र आदिकोंका वर्णन पूर्वोक्त मंत्रोंमें किया है। इसके अतिरिक्त सुतार और तखाणके विविध यंत्रोंका भी वर्णन है। इनके बनानेके लिये लोहेके कारखाने, लोहेके उद्योगधंदे आदि उक्त मंत्रोंसे ही सूचित होते हैं। कारखाने न होनेपर इतने उत्तम छुरे और उस्तुरे किस प्रकार बन सकते हैं? कैंची और चक्कू कहांसे आ सकते हैं? यदि इस्पात और पुलाद न बना, तो उक्त शस्त्र और आयुध कैसे बनाये जा सकते हैं? अर्थात् उक्त मंत्रोंसे इतने काम धंदोंकी

सूचना मिल सकती है; इसका पाठक अधिक विचार कर सकते हैं।

पाठक वेदकी अपूर्वताको भी इन मंत्रोंमें देख सकते हैं। साधारण उस्तुरेका और चक्कु कैंचीयोंका वर्णन करते हुए, बडे बडे तत्वज्ञानके उपदेश वेदके मंत्रोंद्वारा प्रकट हो रहे हैं। किसी अन्य पुस्तकमें इस प्रकार तत्व-ज्ञान-दृष्टिकी सर्वव्यापकता नहीं है। यही वेदकी दिव्यता है। इस बातका पाठक यहां अनुभव करें।
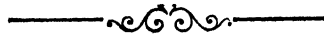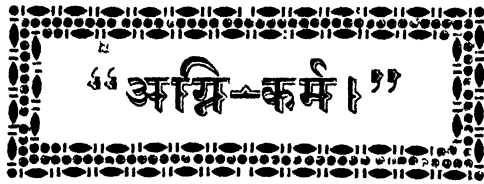
"अग्नि-कर्म।"

(लेखक — रा. सा. कृष्णाजी वि. वझे, इंजिनीयर, नासिक)

(१) अग्निकर्मका भाव।

उपनयन होते ही ब्रह्मचारीको "अग्नि - कार्य" करना होता है। अग्निकार्यका अर्थ भाषामें " अग्निहोत्र , अग्निमें हवन "इ० होता है। कोशोंमें भी अग्निमें हवन , अग्निहोत्र ये ही अर्थ हैं। परंतु वास्तविक " अग्नि-कार्य अथवा अग्नि-कर्म " शब्दके इससे भिन्न अर्थ हैं। अग्निकार्यसे जितने भाव व्यक्त होते हैं , उनमें एक भाव अग्निहोत्र से व्यक्त होता है , इसमें संदेह नहीं; तथापि उस शब्दके अन्य बहुतसे उपयोगी अर्थ हैं , जो अर्थ कोशोंमें उपलब्ध नहीं होते।

एकही शब्द भिन्न शास्त्रमें प्रयुक्त होनेके कारण विभिन्न अर्थोंको व्यक्त करता है। परंतु यह बात आज कल बहुतही थोडे लोग जानते हैं!! इस मुख्य बातको न समझनेके कारण बडे बडे विद्वान् वेदका अर्थ करनेके समय तथा शब्दोंका अर्थ निश्चित करनेके समय बडी गलतियां करते हैं। इसका उदाहरण "अग्निकार्य" शब्दमें ही देख सकते हैं।

" अग्नि-कर्म " शब्दका अर्थ अग्निसे होनेवाला कर्म है और यही भाव "अग्नि-कार्य" शब्दमें है। अग्नि-होत्र अग्निसे होता है इस लिये इसका नाम अग्निकार्य होना संभव है; तथापि उस शब्दका यही एक अर्थ नहीं है। जैसा कि शब्दकल्पद्रुम कोशमें लिखा है।

अग्निकार्य—क्ली (अग्नि+कार्य) अग्नावग्नेर्वा कार्य। हविर्दानादि पूर्वकाग्निज्वालनं। तत्पर्यायः अग्नींधनं, अग्नीध्रा, अग्नि-कारिका इति हेमचंद्रः। होमादौ हविर्दानादि पूर्वकाग्नि-ज्वालनं। अग्नौ सायं प्रातः समिद्धोमानुष्ठानं। यथा— " उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः॥ आचार-माग्निकार्यं च संध्योपासनमेव च ॥ मनु० ॥

इस कोशके अर्थमें अग्निकार्यका एक ही अर्थ दिया है, जिसका तात्पर्य होम हवन आदिही है। ऐसे बडे कोशोंमें भी अग्नि-कार्य शब्द के अन्य अर्थ नहीं हैं अन्य अंग्रेजी कोशोंको भी यही अवस्था है। ऐसे अपूर्ण कोशोंसे संस्कृत शब्दोंके संपूर्ण अर्थ विदितही नहीं हो सकते! और ऐसे अपूर्ण कोशोंपर ही केवल निर्भर रहकर जो लोग वेदादि शास्त्रोंका अर्थ करनेकी चेष्टा करेंगे, उनकी स्थिति अंत्यत शोचनीय ही हो सकती है।

अग्निकर्म अथवा अग्निकार्य शब्दसे इतनाही सामान्य भाव लेना है कि अग्निसे होनेवाला कार्य। जो जो कर्म अग्निसे हो सकता है, वह अग्निकार्यही है। उपनयन होनेके पश्चात् ब्रह्मचारीको अग्निकार्य करना पडता था, इसका अर्थ केवल इतनाही नहीं है, कि

ब्रह्मचारी सबेरे शाम थोडासा हवनही किया करते थे। प्रत्युत अग्निसे जो अनेक कार्य होते थे, वे भी ब्रह्मचारियोंको करनेही पडते थे। खनिशास्त्रमें, अग्निकर्मके लिये जो ईंटें आवश्यक होतीं हैं, उनका वर्णन है, वह यहां देखिये—

(२) स्त्रीलिंगी और पुंल्लिंगी ईंटें।

सुघनाः समदग्धाश्च सुस्वराः श्वेतास्त्विष्टिकाः।
स्त्रीलिंगाश्चापि पुल्लिंगा अग्निकर्मसु शोभनाः॥

—खनिशास्त्र।

"अच्छी घन, ठीक प्रकार पक्की हुई, जिसका आवाज उत्तम है, ऐसी श्वेतरंगवाली उत्तम ईंटें, जो ईंटें स्त्रीलिंगी और पुल्लिंगी होतीं हैं, वे सब अग्निकर्म में अत्यंत उपयोगी होतीं हैं।"

भट्टि बनानेके लिये जिन ईंटोंका उपयोग होता है उनका वर्णन इस श्लोकमें है। भट्टि बनाकर जो अग्निकार्य करना होता है, वह लुहारका कार्य प्रसिद्ध ही है। धातुओंका रस बनानेका कार्य, धातुओंको पिघलानेका कार्य अग्निकर्म शब्दसे प्रसिद्ध है। उक्त स्थानमें पुल्लिंगी ईंटें और स्त्रीलिंगी ईंटें कहीं हैं, उनका लक्षण निम्न श्लोकमें देखिये —

मूलाग्रादार्जवं पुंस्त्वम्
मूले स्थूलं कुशाग्रं स्त्रीः।

जो ईंट दोनों ओरसे सम रेखामें समान होती है, पुल्लिंगी ईंट है। इसीको "पुरुष ईंट" कहते हैं। परंतु जो एक तर्फ चौडी

और दूसरी ओर किंचित् न्यून होती है, उसको " स्त्री ईंट " कहते हैं। पूर्वोक्त अग्निकर्ममें अर्थात् लुहार आदिकी भट्टियां बनानेके लिये उक्त दोनों प्रकारकी स्त्री ईंटें और पुरुष ईंटें आवश्यक होती हैं। इस प्रकारकी ईंटोंकी बनी हुई भट्टिमें जो अग्निकर्म होता है वहअग्निहोत्रका हविर्द्रव्यका हवन नहीं है, प्रत्युत लुहार आदिका कार्य है। " **अग्निकार्य** " शब्दका यह तात्पर्य यहां देखने योग्य है।

(३) आय – व्यय।

" **आयव्यय** " प्रकरणमें निम्न श्लोक देखने योग्य हैं। आयव्ययका अर्थ प्राप्ति और खर्च यहां अभीष्ट नहीं है। आयव्यय शब्द हिसाबके वहीखाते में प्राप्ति और खर्चके अर्थमें आता है, परंतु वास्तुशास्त्रमें इसका अर्थ भिन्नही है। मकानोंके आयव्यय कैसे होने उचित हैं इसका वर्णन निम्न श्लोकोंमें देखिये -

अग्निकार्येषु सर्वेषु पाकशालादिकेषु च ॥
धूम्रोऽग्निकुडसंस्थाने होमकर्मगृहेऽपि च ॥
धूम्रायश्चाग्निशालायां मल्लशालासु वायस : ॥

भट्टियोंके स्थानोंमें, पाकशाला अर्थात् रसोई खानेमें, होमशाला आदिमें धूम्राय होना उचित है। जहां अग्निका कार्य होता है वहां "धूम्राय" होना चाहिये और मल्ल, पहिलवान आदि जहां अपना कार्य करते हैं, उन मकानों में " वायस आय " होना योग्य है। इस श्लोकमें अग्निकार्य शब्द यज्ञशाला वाचक ही केवल नहीं है, प्रत्युत जहां जहां आग जलती है उस स्थानका वाचक है, तथा

अग्निशाला का भी वैसाही सामान्य अर्थ है। ध्वज लगानेके विषयमें निम्न श्लोक भी यहां देखने योग्य हैं–

(४) भ्रम–यंत्र

प्रासादे भ्रमयंत्रे च प्रतिमापीठमंडपे ॥
अग्निकर्मसु सर्वेषु होमशालामठेषु च ॥
दुर्गेषु देवपीठेषु तडागेषु सरःसु च ॥
देवालयस्य शिखरे ध्वजः स्थाप्यःप्रत्नयतः ॥

– शिल्पदीपिका।

(प्रासादे) राजके मंदिर पर, (भ्रम – यंत्रे) पवन चक्की पर, देवताओंके मंदिरोंमें, (अग्नि - कर्मसु) भट्टियोंके स्थानोंमें, होमशालादि यज्ञगृहोंमें, कीले, तालाव, देवालयके शिखर आदि स्थानोंमें प्रयत्नसे ध्वज स्थापन करना चाहिये।

इस श्लोकमें "अग्नि - कर्म" शब्द आगया है, वह भी जहां अग्निसे कार्य कियाजाता है वह स्थान इतनाही भाव बताता है। इस श्लोकमें "भ्रम - यंत्र" शब्द देखने योग्य है, जिससे वर्तुल गति उत्पन्न होती है उसका नाम भ्रमयंत्र है। इस शब्दसे अनेक प्रकारके यंत्रोंकी कल्पना हो सकती है। विशेपतः पवनके योग से जो चक्र चलता है उसका बोध इससे हो सकता है।

शिल्प शास्त्रमें मकानका प्रारंभ करने के लिये मुहूर्त कहे हैं। पुष्य, आर्द्रा, श्रवण, उत्तरात्रय, शततारका, रोहिणी, धनिष्ठा ये ऊपर मुख वाले नक्षत्र राजमंदिर, खेती, भट्टी आदि ऊपर मुख वाले कार्य करनेके लिये योग्य हैं; इस विपयके श्लोक ये हैं -

पुष्यार्द्रा श्रवणं चैव उत्तरात्रयमेव तु ॥
शततारा रोहिणी च धनिष्ठा ऊर्ध्ववक्रगाः ॥
प्रासादं तोरणं चैव कृषिं चैव समारभेत् ॥
ऊर्ध्ववक्त्राणि कार्याणि चाग्निकार्याणि कारयेत् ॥

शिल्पसंहिता ॥

इन श्लोकोंका तात्पर्य ऊपर लिखाही है। इस श्लोकमें "अग्निकार्य" शब्द है, उसका पूववंत् ही अर्थ है। इसीप्रकार मकानोंके "अंश" देखनेके प्रकरणमें " इंद्रांश, यमांश, राजांश " ये तीन अंश कहे हैं। यहां इंद्र यम ये देवता वाचक शब्द हैं। इंद्रांश शब्दका अर्थ समझनेसे इंद्रकी भी कल्पना हो सकती है, इसलिये निम्न श्लोक देखिये—

प्रासादे प्रतिमालिंगे जगतीपीठमंडपे ।
अग्निकार्ये वेदिकायामिंद्रो ध्वजपताकयोः ॥ शिल्पसंहिता

राजमंदिर, शिवालय, लिंग, यज्ञशाला, अग्निस्थान आदि स्थानोंमें " इंद्रांश " लेना चाहिये। शिल्पसंहिताके जो मुद्रित पुस्तक हे उनमें आयव्यय तथा अंशादिकोंकी यही व्यवस्था लिखी है। इसलिये इसमें विवाद नहीं हो सकता। उक्त श्लोकोंमें " अग्निकार्य " शब्द है और इंद्रांश शब्द भी है। इस श्लोकको देखनेसे स्पष्ट होता है कि यहांका इंद्र शब्द इंद्र देवताका वाचक नहीं है प्रत्युत विशेष संकेत का बोधक है। इसी प्रकार अग्निकार्य शब्द के विषयमें भी समझना उचित है, अब इस शब्दका वैद्यक प्रक्रियामें अर्थ देखिये—

(५) दागना, अग्निकर्म।

क्रियाभिरेवं सूक्ष्माभिर्यदि रक्तं न तिष्ठति ॥
अग्निकर्म ततः कुर्याद्यथा योग्यं समाहितः ॥ ३४ ॥
बहुव्रणे च मातंगे संतप्ते ज्वरितेऽपि च ॥
अग्निकर्म न कर्तव्यं नागानां हितमिच्छता ॥ ३९॥
शिराऽस्थिमर्मधमनीकोष्ठकंठगताश्च ये ॥
एतेष्वंगप्रदेशेषु नाग्निर्देयः कथंचन ॥ ४६ ॥
अन्येषु च यथायोगमाग्निकर्म विधीयते ॥
उत्सन्नं सादयत्यग्निः सन्नमुत्सादयत्यपि ॥
एतेऽग्निकर्मणि गुणा यस्मात्तस्माद्विजानता ॥ ५४ ॥

पालकाप्य-हस्त्यायुर्वेद । ३ । १० ॥

"यदि इन सूक्ष्म उपचारोंसे रक्त ठीक न हुआ तो शांतचित्तसे अग्निकार्य करना उचित है। हाथीको ज्वर व्रण आदि होनेकी अवस्थामें अग्निकर्म करना उचित नहीं है। शिरा, आस्थि, मर्म, धमनी, कोष्ठ, कंठ आदि स्थानोंमें अग्निकर्म कदापि करना उचित नहीं है। अन्य स्थानोंमें यथायोग्य अग्निकर्म करना योग्य है। आग्निकर्मसे हीन अवयव पुष्ट होता है और सूजा हुआ ठीक दुरुस्त होता है। ये अग्निकर्मके गुण हैं।" इन श्लोकोंका विचार करनेसे वैद्य शास्त्रमें अग्निकर्मका क्या अर्थ है इसका ज्ञान हो सकता है। इसको दागना, दाग देना कहते हैं, यह अग्निचिकित्साका प्रयोग सुश्रुतमें लिखा है। अन्य आर्य-वैद्यग्रंथोंमें भी है। ग्रामोंमें भी

दागनेवाले ग्रामीण लोग बहुत होते हैं। इस चिकित्साका नाम अग्निकर्म है। तात्पर्य—

अग्निकर्म का याज्ञिक प्राक्रियामें अर्थ होम हवन है।
,, वैद्यक ,, ,, दाग देना ,,।
,, शिल्प ,, ,, धातुओंको पिघलाना ,,।
,, वास्तु शास्त्रमें ,, भट्टि आदि स्थान ,,।

इसी प्रकार अन्य शास्त्रोंमें अन्य अर्थ हैं। इनका बोध होनेसे ही वेदका ठीक अर्थ ज्ञात हो सकता है। अब कुछ अन्य शब्दोंके अर्थ बताता हूं—

(६) सावित्री क्या चीज है?

सावित्री के विषयमें यंत्रार्णवमें निम्न श्लोक देखने योग्य हैं।

क्रियाशक्तिस्तु सत्वानां सावित्री प्रोच्यते बुधैः॥
पुरानुभूतं यत्तज्ज्ञैस्तद्ब्रह्मेति प्रचक्षते॥
ब्रह्मानुसारी सावित्री सर्वदा सफला स्मृता॥

यंत्रार्णव।

"सत्व पदार्थोंकी जो क्रिया शक्ति है उसको सुज्ञ वैज्ञानिक सावित्री कहते हैं। तत्त्वज्ञानियोंने जो भूतकालमें विज्ञान अनुभवसे देख लिया, उसका नाम ब्रह्म है। जब इस ब्रह्मके अनुकूल सावित्री हो जाती है अर्थात् जब ज्ञानके अनुकूल क्रिया होती है तभी सफलता हो सकती है।"

उपनयन होनेके पश्चात् सावित्रीका उपदेश होता है। यह सावित्री "**क्रिया–शक्ति**" ही है। प्रत्येक पदार्थ में जो क्रियाशक्ति है उसको जाननेका नाम "**सावित्रीकी उपासना**" है, जो ब्रह्मचारीको करनी होती है। संपूर्ण शिल्पशास्त्र तथा वैद्यक आदि शास्त्रोंमें इसी पदार्थमात्रकी क्रियाशक्तिका ही वर्णन होता है। प्राचीन तत्वज्ञानियों और वैज्ञानिकोंने ही जिन क्रियाशक्तियोंका साक्षात्कार किया, अनुभव लिया अथवा सप्रयोग विज्ञान प्राप्त किया, उस ज्ञान विज्ञानका नाम "**ब्रह्म**" हैं, यह जिसके पास होता है वह "**ब्रह्मा**" होता है। इसी ब्रह्माका सावित्रीसे संबंध पुराणोंमें वर्णन किया है जिसकी कथा सबको ज्ञातही है। पाठक विचार करेंगे तो उनको पता लग जायगा कि इस ब्रह्माका उक्त सावित्रीके साथ अर्थात् क्रियाशक्तिके साथ संबंध होना अत्यंत स्वाभाविकही है। जो लोग कथाका उपहास करते हैं उनको एक वार ये अर्थ अवश्यही देखने चाहिये। यदि ये लोग इन अर्थोंका विचार करेंगे तो पश्चात् कभी उपाहास करेंगेही नहीं। गोपथ ब्राह्मण में सविता और सावित्रीके विषयमें निम्न प्रकार वर्णन है— (गोपथ ब्राह्मण पूर्व. १ । ३३ देखिये) —

सविता	सावित्री
मन	वाक्
अग्नि	पृथिवी
वायु	अंतरिक्ष

आदित्य	द्यौः
चंद्रमा	नक्षत्र
अहः (दिन)	रात्री
उष्णता	शीतता
अभ्र (मेघ)	वर्षा (वृष्टि)
विद्युत्	स्तनयित्नु
प्राण	अन्न
वेद	छंद
यज्ञ	दक्षिणा

इसीके साथ पूर्वोक्त मंत्र संहिताके अर्थ भी देखिये : -

ब्रह्मा	सावित्री
ब्रह्म (ज्ञान)	क्रिया (कर्म)
ज्ञानशक्ति	क्रियाशक्ति

वेदके सावित्री मंत्रका अर्थ देखनेके समय इन सब बातोंका अनुसंधान करना आवश्यक है ।

(७) सदसस्पति कौन होता है ?

सदसस्पतिके विषयमें भी अर्थ विषयक अनास्था है । इस शब्दका अर्थ भृगुसंहितामें स्पष्ट हुआ है और वही सर्वत्र लेने योग्य है । देखिये –

उपनीतान्बहून् शिष्यान् शिक्षणाच्छादनादिभि : ॥
संपालयति यो विद्वान् सदसस्पतिरुच्यते ॥ भृगु. ॥

" अनेक शिष्येंका उपनयन करके भोजन आच्छादन वस्त्र प्रावर्ण तथा योग्य शिक्षासे जो उन सबका यथायोग्य पालन करता है उसको सदसस्पति कहते हैं।" आजकल गुरुकुलेंमें जो मुख्याधिष्ठाता होता है वही यह सदसस्पति है। वैदिक धर्माभिमानियेंको उचित तो यह था कि वे मुख्य अधिष्ठाताके लिये "**सदसस्पति**" शब्दकाही प्रयोग करते। परंतु किसी कारण योग्य शब्द अप्रयुक्त रहा और अन्य शब्दही प्रयुक्त होगया है। इसी विषयका मंत्रभी देखिये –

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिंद्रस्य काम्यम् ॥
सनिं मेधामयासिषं ॥ वा. य. ३२। १३

" इंद्रकी कामना पूर्ण करने वाले अद्भुत और प्रिय सदसस्पति के पास मेधाकी याचना करता हूं। "

इंद्र और सदसस्पातिके पूर्वोक्त अर्थ लेकर इसी मंत्रका अर्थ देखिये, कितना आल्हाददायक उपदेश मिलता है। पाठशाला का मुख्य सदसस्पाति है। इस सदसस्पतिके आधीन विद्यार्थियोंके रहने सहनेका भी प्रबंध है। इंद्र नाम है जनराजा का। अर्थात् जनराजाकी योग्य कामना पूर्ण करनेवाला सदसस्पाति विद्यार्थियोंमें मेधाकी वृद्धि करता है। " मेधाजनन " प्रयोगमें ही इस मंत्रका विनियोग है।

(८) छंदऋषि का तात्पर्य।

वेदका अर्थ करनेके समय छंद--ऋषिका ज्ञान अवश्यक होता है। तथा उपनयन होनेके पश्चात् सावित्री, मेधा ब्रह्मा, सदसस्पती, छंद

ऋषि आदि देवताओंके साथ उस ब्रह्मचारीका संबंध आता है। अन्य शब्दोंके अर्थ देखे, अब क्रम प्राप्त छंद ऋषिका भाव देखना है –

निश्चित्य मनसा ब्रह्म तपोभिर्बहुभि : स्वयम् ॥
छंदांसि वर्तयन् ये च छंद ऋषित्वेन कीर्तिताः ॥

"मनसे ब्रह्म–ज्ञान–का निश्चय करके, अनेक प्रकारके तपों द्वारा उसका साक्षात्कार करके जिन्होंनें वह साक्षात्कृत ज्ञान छंदोंमें रखदिया उनका नाम छंद ऋषि है" विचार अनुभव तथा साक्षात्कार का इस प्रकार इनसे संबंध है। इसीलिये निरुक्तकार कहते हैं कि—

साक्षात्कृतधर्माणो ऋषयो बभूवुः ।
ते ऽवरेभ्यो ऽसाक्षात्कृतधर्मभ्यः
उपदेशेन मंत्रान् संप्रादुः ॥ निरुक्त १।६।२०

"जिन्होंनें साक्षात्कार किया ऐसे ऋषि होगये, उन्होनें साधारणोंको ज्ञान दिया" येही छंद ऋषि हैं। इनका संबंध ब्रह्मचारीसे होता है।

(९) "अग्नामरुतौ" का भाव ।

वेदमें "अग्नामरुतौ" यह संयुक्त देवता कई सूक्तोंमें है। किसी भाष्यसे इसका ठीक ठीक बोध नहीं होता कि यह देवता क्या है। अग्निके साथ मरुत का संबंध इसमें स्पष्ट है।

अग्नि—मरुत्
अग्नि—वायु

इस देवताका स्वरूप खनिशात्रका अवलोकन करनेसे स्पष्ट होता है। देखिये—

अग्नामरुद्भ्यो धातूनां
शोधनं सुलभं स्मृतम् ॥ खनिशास्त्र ॥

" अग्नि और मरुत् इन दो देवताओंकी सहायतासे धातुओंकी शुद्धि सुलभ रीतिसे होती है।" पूर्वोक्त भट्टियोंमें लोहा आदि धातुओंको रखना और पश्चात् अग्नि और वायुके योगसे उस धातुकी शुद्धि करनेकी सूचना यहां मिलती है। जिस ब्रह्मचारीका प्रवेश गुरुकुलमें उपनयनके पश्चात् होता है उसको " अग्निकार्य के साथ साथ ": अग्नामरुतौ " का परिचय दिया जाता है। उक्त श्लोकके मननसे इस देवताका भाव स्पष्टतया विदित हो जायगा। भूमि खननके पूर्व इंद्राग्नि देवताका पूजन विहित है। देखिये —

इंद्राग्नी पूजयेत्पूर्वम्
ततो खननमाचरेत् ॥ खनिशास्त्र ॥

" इंद्राग्नि की पूजा होनेके पश्चात् मंदिरकी बुनियाद के लिये भूमिका खनन किया जावे।" यहांभी अग्नि और इंद्रकी पूजा सांकेतिकही है। इस प्रकार ये शब्द अर्थात् ये देवतावाचक शब्द यंत्रादि शास्त्रोंके पारिभाषिक शब्द हैं।

(१) " शकुंत " देवता। शकुंतविद्या।

उपनीत ब्रह्मचारीको शकुंत देवता की उपासना करनी होती है। शकुंत शब्द पक्षियोंका सामान्यतया वाचक है। शकुंत पक्षि-

योंसे क्या कार्य होता था, इसका यहां अवश्य विचार करना चाहिये। देखिये निम्न श्लोक —

गरुत्मद् हंसैः कंकालैरन्यै : पक्षिगणैरपि ॥
आकाशे वाहयेद्यानं विमानमिति संज्ञितम् ॥

अगास्तिसंहिता।

" गरुड, हंस, कंकाल, तथा अन्य पक्षियोंकी योजनासे विमान संज्ञक आकाशयान आकाशमें चलाया जाता है। " यही प्राचीन आर्योंकी " **शकुंत विद्या** " है। यह विद्या ब्रह्मचारीको पढाई जाती थी। पूर्व लेखमें बतायाही है कि उदान वायु उर्वशीमें भरकर उससे आकाशनौका अथवा विमान बनाया जाता था। इसको गति देनेके लिये यह " **शकुंत विद्या** " काममें आती है। आकाशमें गया हुआ यान अथवा विमान इष्ट गतीसे चलानेको यह विद्या है। उर्वशीके साथ मित्रावरुण हैं। उर्वशी यह एक प्रकार की थैली है कि जो विमानके ऊपर रखी जाती है, जिसमें उदान वायु भर कर उसके लघुत्वसे सब विमान ऊपर हवामें अर्थात् गंधर्व लोकमें किंवा अंतरालमें चलाया जाता है। यह " **उर्वशी अप्सरा** " है क्यों कि यह अंतरिक्षके मेघ मंडलके (अप् + सरा : = जलके) मध्यमेंसे चलती है और इसके साथ आकाशनौका चली जाती है। इस उर्वशीके साथ " **मित्रावरुणौ** " का संबंध है। देखिये —

(११) " मित्रावरुणौ " का स्वरूप।

उक्त उर्वशीके साथ रहनेवाले मित्रावरुण कौन हैं और कहां रहते हैं, कैसे उत्पन्न होते हैं, यह विचारका विषय है। इस विषयपर निम्न श्लोक प्रकाश डाल सकता है —

संयोगाज्जायते तेजो मित्रावरुणसंज्ञितं ॥

अगस्त्यसंहिता ।

" मित्रावरुण नामक तेज दो शक्तियोंके संयोगसे होता है । " विद्युत्तेज अथवा बिजुलीका नाम मित्रावरुण है। इसका संबंध उर्वशीसे होता है और विमानकी गति होती है।

वैदिक देवताओंका स्वरूप इस प्रकार शिल्पसंहिताओंमें स्पष्ट हुआ है। गुरुगृहमें रहता हुआ ब्रह्मचारी अग्नि, सदसस्पति, छंदांसि ऋषयः, सावित्री, इंद्राग्नी, मित्रावरुणौ, अग्नामरुतौ, शकुंत, आदि देवताओंकी उपासना करता है। इस उपासनाका तात्पर्य पूर्वोक्त वैज्ञानिक विद्याओंके अध्ययन के साथ है यह इस लेखमें स्पष्ट हुआ। इसका विचार करनेसे गुरुकुलोंका अभ्यासक्रम कैसा होना उचित है, इसका भी स्पष्टीकरण हो सकता है। भौतिक शास्त्रके विद्याओंके साथ इन देवताओंका कितना घनिष्ठ संबंध है यह बात पाठक यहां देख सकते हैं।

वेदकी बहुतसी देवतायें हैं जिनका विज्ञान वर्तमान किसी भाष्यसे नहीं होता। उनका विज्ञान होनेके लिये शिल्पसंहिताओंके विशेष अध्ययनकी जरुरत है यह बात बतानेके हेतुसे ही यह लेख लिखा है।

आशा है कि पाठक भी इसी दृष्टिसे इस लेखका विचार करेंगे ।
और शिल्पसंहिताओंका अध्ययन करके वेदके गूढ आशयका ज्ञान
जाननेका यत्न करेंगे ।

एक ही शब्द विभिन्न शास्त्रों में विभिन्न भावको बताता है ।
किस शास्त्रमें किस शब्दका क्या अर्थ है, इस बातको बताने वाला
एकभी कोश इस समय विद्यमान नहीं है । योंतो कोश बहुत हैं,
परंतु वे उक्त निर्णयके लिये सहाय्य करनेमें असमर्थ हैं । ऐसी अव-
स्थामें देवता वाचक शब्दोंका निश्चय करनेके लिये विभिन्न शास्त्रोंके
अध्ययन को बड़ी भारी आवश्यकता है ।

आशा है कि वेदके जिज्ञासु इसका योग्य विचार करेंगे ।
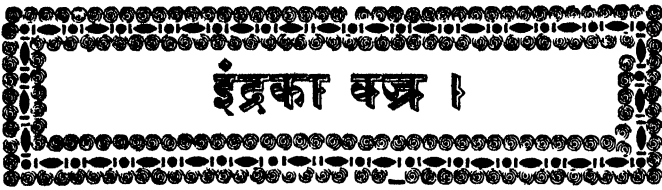
इंद्रका वज्र ।

(लेखक –श्री. रा. सा. कृष्णाजी वि. वझे,
इंजिनियर, नासिक)

इंद्रका वज्र वेद, ब्राह्मणों और पुराणोंमें भी प्रसिद्ध है। इससे पत्थर तोडे जाते हैं और पहाडभी काटे जाते हैं। इसीसे इंद्र पर्वतों को काटता है। यह वज्र क्या चीज है? इस बातका विचार करना चाहिये। इस विषयमें निम्न मंत्र देखिये —

(१) अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायसम्। ऋ. १।५२।८
(२) हरिवान् दधे हस्तयोर्वज्रमायसम्। ऋ. १।८१।४
(३) मह्यं त्वष्टा वज्रमतक्षदायसम्। ऋ. १०।४८।३
(४) अवाभरद्धृषितो वज्रमायसम्। ऋ. १०।११३।५

"(१) तू दोनों हाथोंसे लोहेका वज्र धारण करता है। (२) अश्वोंसे युक्त वीर अपने दोनों हाथोंसे लोहेका वज्र धारण करता है। (३) कारीगरने मेरे लिये लोहेका वज्र (अतक्षत्) बनाया है। (४) प्रगल्भताके साथ उसने लोहेका वज्र शत्रुपर फेंक दिया। "

इन मंत्रोंसे स्पष्ट होता है कि (वज्रं आयसं) यह वज्र लोहेका ही होता है। तथा दोनों हाथोंसे बर्तने योग्य भारी भी होता है। उक्त मंत्रोंमें "हस्तयोः। बाह्वोः" आदि प्रयोगोंसे सिद्ध है कि यह वज्र

दोनों हाथोंसे उठाया जाता है, न कि एक हाथसे। तथा पकडनेवाला भी बडा बलवान शूर योद्धा वीर होता है न की मामुली आदमी। यह वज्र कैसा बनाया जाता था इस विषयमें निम्न मंत्र सहायक हो सकता है —

तस्मै त्वष्टा वज्रमासिंचत्।
तपो वै स वज्र आसीत्। तै. सं. २।४।१२।२

" (स वज्रः) वह वज्र (तपः) तपाहुआ था। (त्वष्टा) कारीगरने उस तपे हुए वज्रको (असिंचत्) पानीसे भिगोया और उसको दिया।

(१) लोहेका शस्त्र पहिले तपाया जाता है और (२) पश्चात् पानीसे भिगाया जाता है। " तपाने और भिगानेसे " शस्त्रकी धारा ठीक होती है। तात्पर्य वज्र बनानेके लिए "**तपन और सिंचन**" ये दो क्रियायें आवश्यक हैं। यजुर्वेद अ० ३० में "**अयस्ताप**" शब्द लुहारोंका वाचक आता है, ये लोहेको तपाते हैं और उसको इच्छित आकार देते हैं। " **त्वष्टा** " शब्दभी कारीगरका वाचक है। इस प्रकार विचार करनेसे " **वेदकी लोहविद्या** " का पता लग सकता है। आशा है कि पाठक इस रीति से विचार करेंगे।

लोहेको तपाने आदिका कार्य " **विद्युत्** " से भी होता है। इस विषयमें भरद्वाज मुनिकृत "**वैमानिक प्रकरण**" देखने योग्य है। इसमें पांचसौ सूत्र हैं और सब मनन करने योग्य हैं। उसमें पांच प्रकारकी विद्युत् कही है —(१) **तडित्** --जो विद्युत् जानवरोंके चमडेके झटकानेसे उत्पन्न होती है, (२) **सौदामिनी** = रेसीम

स्फटिक आदिके घर्षणसे जो उत्पन्न होती है, (३) **विद्युत्** -- जो मेघोंसे होती है, (४) **शतकोटी, शतकुंभी** --जो रसायनोंके मिश्रणसे बनती है, यह कुंभोंमें (बैटरीमें) बनती है इस लिये इसका नाम " **शतकुंभी** " होता है। इस विद्युत्से जो शुद्ध सुवर्ण बनाया जाता है उसका नाम " **शातकौंभ अथवा शातकुंभ** (सुवर्ण) " होता है, (५) **अशनि** = लोहचुंबकके भ्रमणसे उत्पन्न होनेवाली विद्युत् अशनि कही जाती है। इसका संग्रह (ह्रद) होजमें किया जाता है, इसलिये होजोंमें संग्रह करनेके कारण इसको "**ह्रादिनी**" कहते हैं। इसीको "**शतह्रदा**" इसलिये कहते हैं कि यह सौ हौजोंमें संगृहित कीजाती है अथवा सेकडों हौजोंमें।

साधारण लोग ये शब्द विद्युद्वाचक हैं ऐसा समझते हैं। परंतु शिल्पसंहिताओंके अध्ययनसे इन नामोंसे व्यक्त होनेवाला भाव ज्ञात होता है। आशा है कि पाठक इसका विचार करेंगे। न समझते हुए योंही खंडन मंडन करनेकी अपेक्षा सबसे प्रथम वेदमंत्रोंका वास्तविक अर्थ जाननेकी आवश्यक्ता है, परंतु शोककी बात यह है कि वैदिकधर्मी लोग आदमियोंके पीछे चलनेवाले लकीरके फकीर बनते हैं, परंतु वेदका वास्तविक ज्ञान प्राप्त करनेका यत्न भी नहीं करते। देखिये मंत्र, यंत्र, तंत्र आदि शब्द बहुत लोग बोलते परंतु उसका अर्थ थोडेही जानते हैं। देखिये—

[४] स्वयं-शिक्षक-माला ।

१ वेदका स्वयंशिक्षक। प्रथम भाग। मू. १॥) डेढ रु।
२ वेदका स्वयंशिक्षक। द्वितीय भाग। मू. १॥) डेढ रु।

[५] देवता-परिचय-ग्रंथ-माला।

१ रुद्रदेवताका परिचय । मू. ॥) आठ आने ।
२ ऋग्वेदमें रुद्र देवता । मू. ॥=) दस आने ।
३ ३३ देवताओंका विचार । मू. =) तीन आने।
४ देवता- विचार । मू. =) तीन आने ।

[६] धर्म-शिक्षाके ग्रंथ ।

१ बालकोंकी धर्म शिक्षा। प्रथम भाग। मू. -) एकआना
२ " " " द्वितीय भाग। मू. =) दो आने ।
३ वैदिक पाठ माला । प्रथम पुस्तक। मू. =)

(७) यजुर्वेदका स्वाध्याय ।

१ यजु अ० ३० । नरमेध । मू. १) एक रु.
२ यजु अ० ३२ । एक ईश्वर उपासना। मू. ॥)
३ यजु. अ० ३६ । शांतिका उपाय मू. ॥ आठ आने

(८) ब्राह्मण बोध माला ।

१ शतपथबोधामृत । मू. ।) चार आने

मंत्री-स्वाध्यायमंडल, औंध. [जि. सातारा.]

मुद्रक तथा प्रकाशकः—श्रीपाद दामोदर सातवळकर।
भारत मुद्रणालय, स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा.)